[Registered.]

द्वैतध्वान्तनिवारणम् ।

अर्थात्

दयानन्दीयवेदान्तिध्वान्तनिवारणखण्डनम्

श्रीमच्छ्रीनाथमहादेवपूज्यपादशिष्येण रु-
ड़ोलवंशोद्भवदौर्गादत्तबालादत्तिशर्म्मणा
विरचितं ।

श्रीमद्दुर्गादत्तं नौमि शिवायास्त्रिनेत्रकमलानाम् ।
करुणाभरालयानां महोजसां यो हि लघुतार्थम् ॥
भूत्वा स्वयं त्रिधैकः कल्पितवान्त्रीणिपवित्रपात्राणि ।
क्रमतो बालादत्तं हरिकृष्णं चेति जयकृष्णम् ॥ १ ॥

DVETADHVANTA-NIVARANAM

BY

PANDIT BALA DATTA DURGADATTI

SHREENAGAR GARHWAL.

काशी ।

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ ।

सन् १८८९ ई० ।

भूमिका।

आज तक बहुत से द्वैतवादी कोई तो ब्रह्मोपदेष्टा न पाने के कारण और कोई ब्रह्मोपदेष्टा पाने पर भी मूत्र-बालुका न्याय से अज्ञ के अज्ञ ही रहे और वेदान्त मत को ऐसा असत्य कर डाला जैसा कि जन्मान्ध ग्रह नक्षत्रों को असिद्ध कर डालता है।

सुतरां उनकी भ्रान्ति दूर करने के लिये मैंने यह द्वैतध्वान्तनिवारण नामक पुस्तक रची है जिस्से सब द्वैतवादी निश्चय करलेंगे कि वेदान्तमत सब मतों का शिरोमणि है।

तथाच वे धूर्त वेदान्ति भी जो बिना अन्तर्याग वहिर्यागपूर्वक) ईश्वरोपासना के केवल वेदान्त की पुस्तकें पढ़ वा सुनकर फागन के यथेच्छ बकनेवाले बालकों की नाईं ब्रह्म बने जाते हैं और मुंह से संसार को मिथ्या कह कर उस्का मजा लूटना चाहते हैं यह जान लेंगे कि ब्रह्म बनना कुछ सहज नहीं है क्योंकि जब तक जीव के लिङ्ग (इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति। समष्ट्येकं लिङ्गम्।) भङ्ग न हुये तब तक ब्रह्म

नहीं होसकते किन्तु नास्तिक तो हो जाते हैं तथाहि "संसारविषयासक्तं ब्रह्मज्ञोस्मीति वादिनं। कर्म्मब्रह्मो-भयभ्रष्टं तन्त्यजेदन्त्यजे यथा। अनुभूतिं बिना मूढ़ो वृथा ब्रह्मणि मोदते। प्रतिबिम्बितशाखाग्रफला स्वादानु-मोदितः"।

श्रीबालादत्तः—दौर्गादत्तिः
श्रीनगर गढ़वाल।

निम्नलिखित पुस्तकें पण्डित हरिकृष्ण दौर्गादत्ति ट्रेनिंग स्कूल देहरादून से मिलेंगी।

जगद्विख्यात दयानन्द मतखण्डन (अप्रतिमप्रतिमा) मूल्य।, अप्रतिम निरूपण खण्डन, /॥ प्रस्ताव पुष्पाञ्जलिः नूतन काव्य अति मनोहर कविता पूरित।/॥ शतश्लोकी रघुवंश (सारे रघुवंश का सार सौ श्लोकों में /)॥

द्वैतध्वान्तनिवारणम् ।

हे पाठकगण ! क्या आप लोग भी आधुनिक शास्त्रों के अन्धे नाम के नयनसुख पण्डितों के अनर्थोपदेश रूपिणी वागुरा में जा फँसे हो ? क्या प्राचीन ऋषि मुनियों के सदुपदेशामृत फल को छोड़ पाषण्डियों की अट्ट की सट्ट रूपि इन्द्रायणफल के लोलुप हो गये हो ? ध्यान दीजिये ! भली भांति विचारिये तो सही आप लोगों को भी तो ईश्वर ने बुद्धि दी है, किन्तु यह प्रार्थना है कि अपने कल्याण पर दृष्टि देकर और पक्षपात को छोड़कर श्रवण करिये कि आधुनिक अविवेकपङ्किल हृदय में अज्ञान बीजवप्ता एक महात्माजी ने वेदान्त मत के विपक्ष में एक "वेदान्तिध्वान्तनिवारण" नामक पुस्तक रची है जिसमें उन्होंने वेदान्त मत पर चार बातों का बट्टा लगाया है अर्थात् १ वेदान्ती लोग जीव को ब्रह्म मानते हैं, २ स्वयं पाप करें और कहें कि हम अकर्त्ता और अभोक्ता हैं, ३ जगत को कल्पित मानते हैं ४ मोक्ष में जीव का लय मानते हैं ।

अब मैं ग्रन्थकर्त्ता के उक्त ४ दुर्वादों को पृथक् २ दिखाकर खण्डन करता हूं आशा है कि सब द्वैतवादियों

की भ्रान्ति उनके विवेकहीन चित्त से बिदा हो जायगी।

अब वेदान्तिध्वान्तनिवारण के कर्ता के दुर्वाद के स्थान पर "दु:" चिन्हकर और उन दुर्वादों के खण्डन के स्थान पर "खं" चिन्हकर सनातन वेदान्तमत पाठकों के सन्मुख प्रकाशित करता हूं।

दु:—वेदान्ति जीव को ब्रह्म मानने में ऐत्तरेय ब्राह्मण के "प्रज्ञानंब्रह्म" इस वाक्य का प्रमाण देते हैं सो इस वाक्य में ब्रह्म का स्वरूप निर्णय किया है "प्रकृष्टंज्ञानं यस्मिन् तत् प्रज्ञानं" अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप।

खं०—आगे जब जीव ब्रह्म सिद्ध होगा तो आपही जीव प्रकृष्टज्ञानस्वरूप सिद्ध हो जायगा।

दु:—वेदान्तिलोग "अहं ब्रह्मास्मि" इस वाक्य से "मैं ब्रह्म हूं" यह सिद्ध करते हैं अर्थात् मैं भ्रांति से जीव बना था अब मैंने जान लिया कि मै ब्रह्म हूं यह अनर्थ इनका बिलकुल खोटा है क्योंकि पूर्वापर ग्रन्थ का संबन्ध बिनाचोर की न्याई बीच में से एक टुकड़ा लेके अपना मतलब सिंधु का अर्थ करके स्वार्थ सिद्धि करते हैं। देखो इस बचन का पूर्वापर सम्बन्ध इस प्रकार का है। शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४ प्रपाठक ३ कण्डिका १९ "आत्मेत्येवोपासीत"। अन्यत्र—ह्येते सर्व्वे एकं भवंतीत्युपक्रम्य। तदेतत्प्रेयो पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मा

दन्तरतरं यदयमात्मा सयोन्यमात्मनः प्रियंब्रुबाणंब्रूयात्प्रिय
ᳫरोत्स्यतीश्वरोह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीतसय
आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्यप्रियं प्रमायुकं भवति
१९ तदाहुः । यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्यामन्यन्ते
किमुततद्ब्रह्मविद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति ॥ २० ॥ ब्रह्म-
वाइदमग्र आसीत् तदात्मानमेवा वेदहं ब्रह्मास्मीति
तस्मात् तत्सर्वमभवत् तद्योयो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव
तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्यांणां ॥२१॥ तद्दैतत्पश्यन्नृषि
वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवᳫ सूर्यश्चेति तदिदमप्येतर्हि
यएवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति सइदᳫसर्वं भवति तस्यहन
देवाश्चनाभूत्या ईशत आत्माह्येषाᳫ सभवत्यथयोन्यां देवता-
मुपास्तेऽन्योऽसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवᳫस-
देवानां यथाहवै बहवः पशवोमनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पु-
रुषोदेवान् भुनक्त्येकस्मिन्नेव देवानां पशावादीयमाने
प्रियंभवति किमुबहुषुतस्मादेषां तन्नप्रियं यदेतन्मनुष्याः
विद्युः । २२ ॥

खं०—हे पाठकगण ! भला विचारियो तो सही
बादी जी ने जो वेदान्तियों पर पूर्वापर संबन्ध विचारे
बिना जीव को ब्रह्म सिद्ध करने का दोषारोपण किया है
यह कैसा किया है देखिये पहिले तो बादी जी ने "अहं
ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं इस वाक्य के पूर्वापर सम्बन्ध की

श्रुतियां इस अर्थ लिखी कि जीव ब्रह्म नहीं हो सकता, अब मैं उक्त श्रुतियों का अर्थ आप लोगों के सन्मुख प्रकाशित करता हूं इस लिये कि पूर्वापर सम्बन्ध से किस प्रकार सिद्ध हो सकता है कि "मैं ब्रह्म नहीं हूं" वा 'जीव ब्रह्म नहीं है'। उक्त श्रुतियों का तो यह अर्थ है कि 'आत्मा की उपासना करै। यह आत्मा पुत्र से वित्तसे और अन्य सब पदार्थों से प्यारा है और सब से अन्तरतर है। जो आत्मा से दूसरे को प्यारा कहै उसे यह कहना चाहिये कि तू रोवेगा क्योंकि वह ईश्वर है इसलिये जैसा कहता है वैसाही होता है इसलिये आत्माही को प्रिय जानकर उपासना करै, वह जो आत्माही को प्रिय जानता है उसका सुख नष्ट नहीं होता है ॥ १९ ॥

ब्रह्मवित्ता लोग कहते हैं कि मनुष्य लोग मानते हैं कि हम ब्रह्म के ज्ञान से सब कुछ हो सकते हैं और वह ब्रह्म है जिसको जान कर वह सब कुछ हो गया ॥२०॥

ब्रह्म सब से पहिले हुआ उसने अपने को जाना कि मैं ब्रह्म हूं इस ज्ञान से वह सब कुछ हो गया (सब कुछ होने का कारण ब्रह्मज्ञान है जिस ज्ञान से २० मन्त्र में मनुष्य का और २१ मन्त्र में ब्रह्म का सब कुछ होना कहा है) इसलिये जो २ देवताओं में मनुष्यों में और ऋषियों में ब्रह्मज्ञानी हुआ, वह ब्रह्म हो गया ॥ २१ ॥

इसी ज्ञान से बामदेव ऋषि ब्रह्म हुआ मैं मनु और सूर्य ब्रह्म हुये जो ऐसा जानता है कि मैं ब्रह्म हूं वह सब कुछ हो जाता है देवता उसके ब्रह्मज्ञान में विघ्न नहीं डालते हैं क्योंकि वह इनका आत्मा हो जाता है जो देवता की उपासना करते हैं और यह जानते हैं कि यह देवता और है और मैं और हूं वह ब्रह्म को नहीं जानता वह देवताओं का पशु हो जाता है जैसे मनुष्य को बहुत से पशु पालते हैं तैसे ही एक २ मनुष्य देवताओं को पालता है और जैसे एक पशु अर्थात् व्याघ्रादिक से किसी मनुष्य के अपहरण किये जाने पर वह व्याघ्रादिक अप्रिय हो जाता है तैसे ही पुरुष के पशु भाव में स्थित न रहने पर अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होने पर वह पुरुष देवताओं का अप्रिय हो जाता है ॥ २२ ॥

दुः०—उक्त श्रुतियों में जो यह कहा है कि "आत्मेत्येवोपासीत" अर्थात् आत्मा की सब जीव उपासना करें तो उपास्य (उपासना योग्य) और उपासक (उपासना करने वाला) ये दोनों एक किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते हैं । और "अहं ब्रह्मास्मि" का यह अर्थ नहीं है कि "मैं ब्रह्म हूं" किन्तु यह अर्थ है कि "मैं ब्रह्मस्थ हूं" क्योंकि यह तो न्याय शास्त्र में भी लिखा है कि जहां २ असम्भव बातें आ पड़े वहां उपाधि से अर्थ जान कर

तात्स्थ्योपाधि से अर्थ करना यथा "मञ्चाक्रोशन्ति" अर्थात् मञ्चस्थ पुकारते हैं। इस कारण वामदेवादिकों का ब्रह्म होना सम्भव नहीं है सो श्रुति का यह अभिप्राय है कि "जो वामदेव के सदृश विज्ञानी होगा वह जानेगा कि "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्मस्थ हूं।

खं०--हां, उपास्य और उपासक का भेद तो केवल कथन मात्र है किन्तु वास्तव में उपास्य और उपासक का अभेदही है भेद का कारण केवल अज्ञान वा भूल है। जैसा किसी कारण जात मात्र परित्यक्त और गड़रिये से पालन किया हुआ राजपुत्र अपने को गड़रिया जानकर राजपुत्रान्तर की भेड़ चुंगाता है तद्वत् जीव परमात्मा की उपासना अपने को परमात्मा न जानकर करता है।

और जो वादी ने जीव का ब्रह्म होना असम्भव जानकर "अहं ब्रह्मास्मि" का अर्थ "मैं ब्रह्मस्थ हूं" तात्स्थ्योपाधि से कर डाला तो क्या वादी ने समस्त जगत् की बुद्धि अपनीहीं सी अविवेकिनी जान ली! जो सर्वसाधारण की सम्मति में जीव का ब्रह्म होना असम्भव सिद्ध कर डाला?। वाह जी वादीजी वाहरे साहस? अब तो वादी ने तात्स्थ्योपाधि के व्यवहार का खूब सुबीता पा लिया है जिस सम्भव वार्ता को अपनी आज्ञनता से असम्भव जाना वहीं उपाधि से अर्थ खींच डाला, बस वादी ने मञ्च

का गिरना असम्भव जाना होगा तो "मञ्चाः पततन्ति" का अर्थ "मञ्चस्थ गिरने हैं कर डाला होगा। हे पाठक गण बिचारिये तो सही क्या बादी ने यह नहीं सोचा होगा कि "मैं ब्रम्हस्थ हूं" यह ज्ञान तो इस समय पृथ्वी के प्रायः सब ही मनुष्यों को है और प्राचीन समय के बाबत तो क्या कहना पड़ता है उस समय में तो यह ज्ञान वेद के प्रचार के कारण सब ही मनुष्यों को होगा, फिर मैं इस प्रकार क्यों लिखता हूं कि "बामदेव के सदृश जो ज्ञानी होगा वह जानेगा कि "ब्रम्हस्थ हूं" इस वाक्य से तो यह सिद्ध होता है कि "मैं ब्रम्हस्थ हूं" का ज्ञान उस समय में बामदेवादि दो तीनों ही को था। वाहरे बिचार !

दु:०—जीव और ब्रम्ह एकही होते तो वक्ष्यमाण श्रुति में जीव और ब्रम्ह का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध क्यों कहा है यथा बृहदारण्य के "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरं य आत्मनमन्तरोयमयति स त आत्मान्तर्यास्यमृतः" अर्थ जो आत्मा में है और आत्मा में मिला है आत्मा से निराला है जिसको आत्मा नहीं जानता जिसका आत्मा शरीर है और जो आत्मा को भीतर से नियमित करता है वह अमृत स्वरूपि आत्मा तेरा भी अन्तर्यामि है।

खं०—भला जब जीव और ब्रह्म का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी हुआ तो जीव के ब्रह्म होने में क्या क्षति हुई? यतः जीव का स्वरूप तो इस प्रकार कहा है कि "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति" अर्थात् इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, ये छ जीवात्मा के चिन्ह हैं॥ जब तक उक्त छ उपाधियां आत्मा में मिली हैं तब तक यह आत्मा आपही जीव कहलाया और आपही निरुपाधि आत्मा से पृथक हुआ और इसी कारण निरु-पाधि आत्मा (ब्रह्म) और सोपाधि आत्मा (जीव) के मध्य में व्याप्य व्यापक संबन्ध हुआ, किन्तु यह व्याप्य व्यापक संबन्ध उक्त छ उपाधियों के भङ्ग होने पर दूर हो जाता है॥ जैसा घट के टूटने पर घटाकाश और महाकाश का व्याप्यव्यापक संबन्ध दूर हो जाता है॥ घटाकाश और महाकाश का दृष्टान्त इस अर्थ दिया गया है कि इसका व्याप्य व्यापक सबंन्ध उक्त बृहदारण्य की श्रुति से मिलता है यथा महाकाश घटोपाधि आकाश में स्थित है और मिला है और (निरुपाधि होने के का-रण) उससे निराला है और यह घटाकाश (उपाधि से सम्वृत होने के कारण) उसको नहीं जानता है और महाकाश का शरीर है और वह महाकाश घटाकाश को नियमिति भी कर सकता (यदि चेतन होता)।

दु:०—नवीन बेदान्ति पूर्वापर सम्बन्ध विचारे बिना इस "तत्त्वमसि" सामब्राह्मणान्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य का अनर्थ करते हैं उसमें यह प्रकरण है कि "सयऽएषोऽणिमै तदात्म्यमिदꣳसर्व्वंतत्सत्यꣳस आत्मातत्त्वमसि श्वेतकेतो इति"।

खं०—भला उक्त श्रुति में कहां लिखा है कि जीव ब्रह्म नहीं हो सकता है? इसमें तो यह कहा है कि उद्दालक अपने श्वेतकेतु पुत्र को उपदेश करता है कि हे श्वेतकेतो वह परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है यह संपूर्ण जगत् तदात्मा है वह परमात्मा सत्य है हे श्वेतकेतो जो वह आत्मा है "तत्त्वमसि" वह तू भी है। हे पाठकगण बिचारिये उक्त श्रुति से तो श्वेतकेतु और ब्रह्म का ऐक्य सिद्ध होता है फिर जीव ब्रह्म क्योंकर नहीं हो सकता?।

दु:०—इस स्थान पर भी तत्त्वमसि का अर्थ तात्स्थ्योपाधि से करना चाहिये यथा हे श्वेतकेतो! तत्त्वमसि सो तेरा भी अन्तर्यामि अधिष्टान आत्मा वही है॥

खं०—वाह! बादी ने तात्स्थ्योपाधि की खूब दुकान खोली है अब तो 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' इत्यादि सब जीव को ब्रह्म प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों का तात्स्थ्योपाधि से अनर्थ करने का सुबीता खूब पालिया है॥ ओह! मुझे तो अब याद आई

है पहिले आती तो सब को सूचित कर देता कि बादी के पास तुम भोजनार्थ पदार्थ कोई मत ले जाइयो ऐसा न हो कि बादी जी तात्स्थ्योपाधि से तुम्हे भी खा जावें। वाह बादी जी! बिनाप्रत्यक्षानुमान प्रमाण देने के अनर्थ करने का खूब बहाना पाया॥

दुः०—नवीनवेदान्ति 'अयमात्माब्रह्म' इस माण्डूक्य उपनिषद् के चतुर्थ महावाक्य से जीव का ब्रह्म होना सिद्ध करते हैं कि 'अयं (यो) आत्मा (जीव) 'ब्रह्म (ब्रह्म है) यह अनर्थ इनका खोटा है, क्योंकि इस वाक्य का तो यह अर्थ है कि जीव समझता है कि मेरा जो अन्तर्यामि सर्वात्मा है वही ब्रह्म है॥

खं०—बादी के "जीव समझता है" कहने से यह सिद्ध होता है कि मूर्ख घोड़े कीड़े मकोड़े आदि सबही जीव समझते हैं कि "हमारा अन्तर्यामि सर्वात्मा जो है वही ब्रह्म है (क्योंकि उक्त व्यक्ति सबही जीव हैं) फिर उद्दालक को अपने श्वेतकेतु पुत्र को यह उपदेश (सो तेरा भी अन्तर्यामि आत्मा वही है) देने की क्या जरूरत थी? क्योंकि श्वेतकेतु भी तो जीव था वह आप जानलेता बस इस्से बादी का तीसरे महावाक्य "तत्त्वमसि" का अर्थ किया हुआ आपही झूठा हुआ। और जो कहो कि केवल विद्वान समझते हैं तो बादी का "जीव समझता

है कहना झूठ है इस्से "अहमात्मा ब्रह्म" का अर्थ बादी का किया हुआ आपही झूठा हुआ । वाह जी सत्यार्थ प्रकाशक जी! सिवाय इस्के 'योसावादित्ये पुरुष सोसवाहं' इसका भी अर्थ बादी ने ऐसाही अगड़ बगड़ कर दिया कही तो यह अर्थ करते हैं कि जीव कहता है कि आदित्य में जो पुरुष है सो मै हूं और कभी यह करते हैं कि ब्रह्म कहता है कि आदित्य में जो पुरुष है सो मै हूं, यह यनमें प्रत्यक्ष ही भ्रान्ति है ॥

इति प्रथमप्रकरणम् ॥

—***—

दुः--इस शरीर में कर्ता और भोक्ता जीव है (जीवात्मा का स्वरूप यह है कि "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति") क्योंकि अन्य सब जड़ पदार्थ बुद्ध्यादिक जीवाधीन हैं सो पुण्य और पाप का कर्ता और भोक्ता जीव से भिन्न और कोई नहीं है क्योंकि बृहदारण्यादिक उपनिषद् तथा व्याससूत्र और वेदादिक शास्त्रों में येही सिद्धान्त हैं ।

यथा। श्रोत्रेणाशृणोति चक्षुषा पश्यति बुद्ध्यानिश्चिनोति मनसा संकल्पयति । अर्थः—जीव श्रोत्र से सुनता है आंखों से देखता है बुद्धि से निश्चय करता है मन से कल्पना करता है । सो कर्मफल श्रोत्रादिक इन्द्रियों को नहीं

मिलता किन्तु जीव को तो मिलता ही है क्योंकि इसमें यह दृष्टान्त है कि तलवार से मारनेवाले मनुष्य को दण्ड मिलता है न कि तलवार को ॥

खं०—हे पाठकगण ज़रा ध्यान दे के पढ़िये तो सही बादी की बुद्धि को क्या हो गया पहिले बादी ने "इच्छा द्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञान" ये छ जीव होने के कारण बताये अर्थात् उक्त छ चीज़ों से जीव हुआ; फिर कहता है कि श्रोत्र से जीव सुनता है आंख से देखता है मन से कल्पना करता है बुद्धि से निश्चय करता है सो पुण्य पाप का फल जीव को मिलता है नकि श्रोत्रादिकों को। हे पाठकगण ! बिचारिये। जब इच्छा द्वेषादि जीव के कारण हुये तो श्रोत्र मन बुद्धि चक्षु किस प्रकार जीव के कारण न हुये क्योंकि इच्छा द्वेषादि बिना मन आदिकों के नहीं हो सक्ते तथाच श्रुतिः—"यस्मान्नऋते किञ्चनकर्म्मक्रियते तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु" इसमें और क्या प्रमाण चाहिये। बस, जब कि श्रोत्र मन आदिक जीव होने के कारण हुये तो फिर जीव उन श्रोत्रादिकों से किस प्रकार पृथक् हो सकता है यदि अपने कारणों से पृथक् हो जायगा तो फिर आप जीव कहां रहेगा (क्योंकि अवयवों के भङ्ग होने पर अवयवी का भी भङ्ग हो जाता है) वह तो निरुपाधि करणरहित ब्रह्म हो जायगा

फिर किस प्रकार वह कर्त्ता और भोक्ता होगा ?। सुतरां गुरु महाराज की कृपा से अपने को निरुपाधि जान कर जीव अकर्त्ता और अभोक्ता हो जाता है।

दु:०—नवीन वेदान्ति जगत् को कल्पित और मिथ्या मानते हैं सो इनका यह अविद्यान्धकार का माहात्म्य है क्योंकि प्रमाण में यह श्रुति है कि "सन्मूला: सौम्येमा: प्रजा: सदायतना: सत्प्रतिष्ठा:" अर्थात् छान्दोग्य उपनिषत् में लिखा है कि ये जो प्रजा हैं इनका मूल आयतन और प्रतिष्ठा सत् है।

खं०—क्या मिथ्या वस्तु का मूल आयतन और प्रतिष्टा सत् नहीं होती ? हां होती है। जैसे सर्प की भ्रान्ति का मूल आयतन और प्रतिष्टा रज्जु होता है और वह रज्जु सत्य होता है। पाठकगण! देखिये बादी स्वयं अविद्यान्धकार में हो कर महात्माओं को दोष देते हैं।

दु:०—नवीन वेदान्तियों की चौथी बात यह है कि मोक्ष समय में जीव का लय ब्रह्म में मानते हैं यह बात उनकी मिथ्या है इसमें यह प्रमाण है "यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह बुद्धिश्च न विचेष्टेततामाहु: परमां गतिं" अर्थात् जब पञ्चज्ञानेन्द्रिय मन के साथ स्थिर (स्वकर्म्मनिवृत्त) हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टारहित हो जाती है उसे मोक्ष कहते हैं।

खं०—वादी का उक्त सिद्धान्त में इस प्रकार खण्डन करता हूं कि वादी जी जीव का स्वरूप "इच्छाद्वेषप्रयत्न-सुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति" पहिले ही लिख चुके हैं फिर मोक्ष समय में जीव का लय न मानने में लज्जा नहीं मानी क्योंकि इच्छा आदि तो बिना मन आदि करणों के होही नहीं सकती फिर जब मोक्ष समय में मन आदिक करण निश्चेष्ट हो गये तो इच्छाद्वेष आदि का कहां सम्भव रहा और जब करणों के निश्चेष्ट होने के कारण इच्छादि (जीव के चिन्ह वा कारण) न रहे तो जीव भी न रहा और अतएव मोक्ष समय में ब्रह्म हुआ।

दुः०—मोक्ष में जीव के लय न होने का यह भी प्रमाण है कि "परंज्योतिरूपसम्पद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" अर्थात् बृहदारण्यक की श्रुति है कि जीव पर ज्योति को प्राप्त होता है अपने रूप से मुक्त हो जाता है।

खं०—भला वादी के उक्त प्रमाण से जीव का ब्रह्म में लय होना किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता है। इसमें तो यही सिद्ध होता है कि जीव इच्छादिक अपनी छ उपाधियों से छूट कर ब्रह्म हो जाता है।

दुः०—जीव के ब्रह्म में लय न होने का प्रमाण शारीरिक सूत्रों के चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद में भी है यथा "अभावं बादरीराहह्येवं" अर्थात् बादरी आचार्य का यह

निश्चय है कि मोक्ष समय में मन को छोड़ अन्य इन्द्रिय वा शरीर जीव के साथ नहीं रहते किन्तु मन तो रहताही है।

खं०--वादी ने जो उक्त सूत्र के अनुसार मोक्ष समय में मन का रहना सिद्ध किया सो उक्त सूत्र में तो मन का नाम तक नहीं कहा गया फिर मन का रहना किस प्रकार सिद्ध होता है। क्या वादी ने सूत्रकार को भी अपने ही सदृश गप्पी ठहराय दिया कि जो मन में आई वही गप्पा ठोक दी? पहिले तो वादी ने मोक्ष का वर्णन इस प्रकार किया कि "यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह" अर्थात् मोक्ष समय में पञ्चज्ञानेन्द्रिय मन समेत निश्चेष्ट हो जाती हैं, अब कहते हैं कि इन्द्रिय तो नहीं रहतीं किन्तु मन तो रहताही है। भला वादी की किस बात पर विश्वास किया जाय। वाह रे मोहिनी! आपापंथियों को खूब मोहा।

दुः--जैमिनि आचार्य का यह मत है कि "भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्"।

खं०--भला जब वादी ने जैमिनि का मत माना तो चार्वाक का मत भी मानना पड़ेगा कि "यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणंकृत्वा घृतं पिवेत् भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः" यदि कहो कि चार्वाक नास्तिक था उसका प्रमाण कैसे माना जाय इसमें मैं यह उत्तर देता हूं कि जैमिनि

भी तो ईश्वर को नहीं मानता था यथा "प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः" अर्थात् प्रमाण न मिलने से ईश्वर सिद्ध नहीं होता है" फिर उसका प्रमाण किस प्रकार माना जाय? ॥

दुः—व्यास जी का भी तो यही मत है कि "द्वादशाहवदुभयविधंवादरायणोऽतः" अर्थात् व्यास जी कहते हैं कि द्वादशाहवत् दोनों प्रकार का है जैसा उस दिन यज्ञ का भाव और अभाव दोनों रहते हैं।

खं०—हे पाठकगण! बिचारिये व्यास देवजी के उक्त सूत्र से तो हमारा ही मत सिद्ध होता है यथा जब मोक्ष समय में "यदापञ्चावतिष्ठन्तेज्ञानानि मनसा सह बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिं" इस श्रुति के अनुसार पञ्चज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि चेष्टाहीन हो जाती हैं और जीव निरुपाधि होने के कारण ब्रह्म हो जाता है तो उस ब्रह्मभूत जीवात्मा में इन्द्रिय मन और बुद्धि का (निश्चेष्ट होने के कारण) अभाव हो जाता है और उनके प्रकृतिस्थ होने से अजागलस्तन की नांई भाव भी रहता है॥ यदि उक्त सूत्र का अर्थ दूसरे अभिप्राय में खीचोगे तो व्यास जी का मत श्रुतिविरुद्ध होगा।

दुः—न्यायदर्शन अ० १ में मोक्ष का इस प्रकार वर्णन किया है कि "दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायापवर्गः २ बाधनालक्षणं दुःखं

२१ तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः" २२ अर्थात् मिथ्याज्ञान ऐसा है कि जड़ में चेतनबुद्धि और चेतन में जड़बुद्धि मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति से जीव के अविद्यादि दोष निवृत्त हो जाते हैं दोष की निवृत्ति से प्रवृत्ति अर्थात् विषयासक्ति दूर हो जाती है प्रवृत्ति के दूर होने से जन्म छूट जाता है जन्म छूटने से दुःख छूट जाता है दुःख छूटने से अपवर्ग जो मोक्ष है वह हो जाता है। दुःख का लक्षण बाधना है उस दुःख की अत्यन्त निवृत्ति से मोक्ष होता है।

खं०—हे पाठकगण ! विचारिये तो सही झूठ की पैड़ कहां तक चलैगी ?। बादी पहिले तो जीव का स्वरूप "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति" कह आये हैं। अब कहते हैं कि मोक्ष समय में जीव को दुःख नहीं रहता है। भला जब दुःख न रहा तो जीव कहां से रहा? क्योंकि जीव का स्वरूप दुःख तो पहिलेही कह चुके हैं। और जब दोष छूट गया तो जीव का दूसरा कारण द्वेष कहां रहा? और जब प्रवृत्ति छूट गई तो जीव के प्रथम और तृतीय कारण अर्थात् इच्छा और प्रयत्न कहां रहे क्योंकि जब प्रवृत्ति नहीं रही तो किस बात की इच्छा होनी है और जब इच्छाही नहीं तो क्यों प्रयत्न करना है? ऐसे ही जीव का चतुर्थ कारण सुख भी दूर हुआ क्योंकि सुख होता तो प्रवृत्ति क्यों न होती?

सुतरां इससे यही सिद्ध होता है कि उक्त मोक्ष सम्बन्धि न्याय के वाक्य से तो इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञान इन छ जीव होने के कारणों का नाम निशान भी नहीं रहता है जब कारणों का नाश हो गया तो कार्य (जीव) आपही न रहा तब तो केवल निरुपाधि ब्रह्म रहा अर्थात वह चेतनांश जो छ इच्छाद्वेषादि उपाधियों से सम्वृत होकर जीव कहलाता था उपाधि निर्मुक्त होने से चेतन (ब्रह्म) रह गया।

दुः० -- सत्यं ज्ञानमनन्तम्ब्रह्म यो वेदनिहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोश्नुते सर्वान्कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चितेति तैत्तरीयोपनिषत्‌वचनं।

खं० --भला इससे भी तो यही सिद्ध होता है कि जीव मोक्ष समय में परमात्मा को प्राप्त होता है अर्थात् सब कामों को भोग के ब्रह्म में मिल जाता है। इसमें मैं यह कहता हूं कि जैसा घटाकाश घट टूटने पर महाकाश में मिल जाता है तद्वत् उक्त श्रुति का भी अभिप्राय है।

दुः० --और भी एक प्रमाण है कि "शुद्धमपापविद्धं कविरित्यादि। ब्रह्म शुद्ध व निष्पाप है॥

खं० --भला वेदान्ति ब्रह्म को अशुद्ध और पापयुक्त कब कहते हैं ?।

दुः०—तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् अनेनात्मनाजीवेनानु-प्रविश्य नामरूपेव्याकरवाणि।" इस वाक्य से वेदान्ति लोग ब्रह्म का अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर जीव होना कहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्म परिपूर्ण होने के कारण निकल या प्रवेश नहीं कर सकता है।

खं०—हां ब्रह्म तो परिपूर्ण ही है किन्तु यह भी जानना चाहिये कि सृष्टि के पूर्व केवल ब्रह्मही था और जब उसने सृष्टि उत्पन्न की तो अपने सृष्टि देहों के भीतर होने से जीवात्मा कहलाया ब्रह्म के जीवत्मा रूप होने को अनुप्रवेश कहते हैं क्योंकि सृष्टि के पूर्व ब्रह्म का जीवात्मा रूप नहीं था अतएव ब्रह्म के जीवात्मा का अनुप्रवेश पीछे होता है यथा महाकाश का घटाकाश रूप घट के उपस्थित होने पर होता है इस्से उस घट में हम घटाकाश का प्रवेश कहते हैं क्योंकि वह घटाकाश घट के उपस्थित होने के पूर्व नहीं था ऐसे ही जब घट के टूटने पर नहीं रहता है तो हम उस घटाकाश का चलाजाना मानते हैं तद्वत् ब्रह्म के रूपान्तर जीव का निकलना और प्रवेश करना सिद्ध होता है । और भी देखिये ऐटमोस्फियर (वायु) पृथवी के चारो ओर ४५ मील ऊपर तक स्थित हो रहा है फिर हम क्यों कहते हैं कि उस घर में वायु घुसता है। सिवाय इस्के वेदान्ति लोग

जीव का स्वरूप अन्तःकरण में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को मानते हैं इस लिये भी जीव का अनुप्रवेश कहते हैं यतः पहिले जब अन्तःकरण उत्पन्न होता है तब दर्पण की नाईं उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अनुप्रवेश करता है।

दुः०—जीवात्मा और परमात्मा के भेद का यह प्रमाण है कि "द्वासुपर्णासयुजासखायौसमानं वृत्तं परिषस्वजाते"।

खं०—वादी ने जो उक्त श्रुति से जीवात्मा व परमात्मा का भेद बताया अश्रद्धेय है क्योंकि उक्त श्रुति में दृग्शक्ति और दर्शनशक्ति दो सुपर्ण कहे गये हैं। यदि जीवात्मा और परमात्मा ही मानो तौभी क्या हानि है। क्योंकि जैसे सम्यक् ज्ञान से रज्जु में रज्जुत्व और भ्रान्ति से सर्पत्व दोनों स्थित हैं तद्वत् ज्ञान से ब्रह्मत्व और अन्तःकरणोपाधि से जीवत्व दोनों ब्रह्म में स्थित हैं इसलिये ब्रह्मत्व और जीवत्व दो सुपर्ण कहलाये।

दुः०—जगत् का ईश्वर की सामर्थ्य से उत्पन्न होना और ईश्वर से भिन्न होने के ये प्रमाण हैं कि "त्वमस्य पारेरजसो व्योमनः स्वभूत्योजाअवसेधृषन् मनः चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोपः स्वः परिभूरेष्यादिवम् १ ऋ० सं० अ० १ अ० ४ व० १३ मं० १२ न यस्य द्यावापृथवी अनुव्यचोन सिंधवो रजसो अन्तमानशुः नोतस्व वृष्टिमदे

यस्य युध्यत एको अन्यश्वक्षषे विश्वमानुषक् ऋ० सं० अ० १ अ० ४ व० १४ मं० १४ ।

खं०—बादी ने जो उक्त श्रुतियों में ईश्वर की सामर्थ्य से सृष्टि का होना और जगत् का ईश्वर से भिन्न होना कहा है सो इस्से वेदान्त मत पर क्या बट्टा लगा। वेदान्ति भी तो जगत् का कर्त्ता और उससे भिन्न ईश्वर को मानता है। क्योंकि जैसा जीव अविद्योपाधि है तद्वत् ईश्वर भी मायोपाधि ब्रह्म है। जीव ईश्वर और ब्रह्म का यह भेद है कि जीव अल्पज्ञ और अल्प शक्तिमान् है, ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, ब्रह्म निरुपाधि है, ईश्वर और जीव अपनी उपाधियों से छूट कर ब्रह्म हो जाते हैं क्योंकि ईश्वर और जीव पहिले ब्रह्म ही थे किन्तु उपाधि सहित होने से ईश्वर और जीव हो गये। बस जैसे हम कटक को कुण्डल और कुण्डल को कटक नहीं कह सक्ते किन्तु दोनों को सुवर्ण तो कह सकते हैं तद्वत् जीव को ईश्वर और ईश्वर को जीव नहीं कह सकते किन्तु दोनों को ब्रह्म कह सकते हैं।

दुः०—जीवात्मा और परमात्मा में भेद है क्योंकि उन के बीच व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध का यह प्रमाण है कि "अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायां तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमान

मात्मन:" नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेकोबहूनां योविदधाति कामान् तमात्मस्थं ये नु पश्यन्ति धीरास्तेषां शान्ति: शाश्वतीनेतरेषां ।

खं०—जैसा महाकाश के घटाकाश में रहने से व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रहता है तद्वत् जीवात्मा और परमात्मा के बीच भी जानो।

अब तो वादी जी वेद प्रमाण देते २ थक गये केवल पुस्तक का काण्ड छोटा देख कर व्यास सूत्रों (जिनका पूर्वापर सम्बन्ध कुछ भी नहीं है) से पुस्तक की पूर्ति करना चाहते हैं यथा—

दु:०—"नेतरोनुपपत्ते:" जीव जगत् की चेष्टा नहीं कर सक्ता है।

खं०—भला वेदान्ति कब कहते हैं कि जीव जगत् की चेष्टा कर सक्ता है ?।

दु:०—"भेदव्यपदेशाच्च" जीव और ब्रह्म में भेद है।

खं०—उक्त सूत्र का यह अर्थ नहीं है कि जीव और ब्रह्म में भेद है किन्तु यह अर्थ है कि जीव और ईश्वर में भेद है क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् होने से जगत् की चेष्टा कर सक्ता है और जीव अल्पशक्तिमान् होने से नहीं कर सक्ता है। यदि वादी का हठात् जीव ब्रह्म के ही भेद से अभिप्राय है तोभी वेदान्त मत की क्या क्षति है क्योंकि जब तक अज्ञानोपधि है तब तक जीव ब्रह्म में भेदही है।

दुः० —"मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्" मुक्त पुरुष ब्रह्म को पहुंचता है।

खं०—वेदान्तियों की भी तो यही सम्मति है।

दुः० —"प्राणभृच्च" प्राणधारी जीव जगत का कारण नहीं है।

खं०—वेदान्ति कब कहते हैं कि जीव जगत का कारण है?।

दुः०—"विशेषणभेदव्यापदेशाभ्यां नेतरौ" इससे भी सिद्ध होता है कि जीव जगत का कारण नहीं है।

खं०—यह तो हम पहिले ही कह चुके हैं कि जीव जगत का कारण वेदान्ति कब कहते हैं लेकिन वादी की पुनरुक्ति से यही सिद्ध होता है कि पुस्तक की पूर्ति के लिये एक दो पंक्तियों की कसर थी सो पूरी हुई।